

शिक्षा का निजीकरण : कुछ बेतरतीब नोट्स

राजाराम भादू

लेखक परिचय :

आगरा विश्वविद्यालय के का.मू. हिन्दी में भाषा विज्ञान संस्थान से लोक संस्कृति एवं भाषा विज्ञान में स्नातकोत्तर डिप्लोमा। विकास अध्ययन संस्थान, बोध और दिगन्तर संस्थाओं के लिए शोध व प्रलेखन, शैक्षिक नवाचार और विकास की वैकल्पिक अवधारणाओं पर अध्ययन, दिशाबोध पत्रिका के संपादक, सेन्टर फॉर कल्चरल एक्शन एण्ड रिसर्च के कार्यकारी निदेशक (मानद)।

पुस्तक :

धर्मसत्ता और प्रतिरोध की संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, शिक्षा के सामाजिक सरोकार, शिक्षा के संदर्भ और विकल्प (सह-संपादक), आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा।

सम्पर्क :

समान्तर, सेन्टर फॉर कल्चरल एक्शन एण्ड रिसर्च, 71, हिम्मत नगर, टोंक रोड, जयपुर।

शिक्षा के सार्वजनीकरण का मसला लोकतंत्र के उद्भव और इसके आधुनिक स्वरूप से जुड़ा है। हम जिसे आधुनिक शिक्षा कहते हैं, उसका वजूद नवजागरण और लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था की उपज है। लोकतंत्र में जब समानता, स्वातंत्र्य और बन्धुत्व को सार्वजनीन मूल्यों के तौर पर मान्यता दी गई तभी शिक्षा के सार्वजनीकरण का पथ प्रशस्त हुआ। यह माना गया कि बिना आधुनिक शिक्षा के व्यक्ति की सामर्थ्य उस तरह विकसित नहीं हो सकती जैसी कि लोकतांत्रिक प्रणाली में उसकी सक्रिय सहभागिता के लिए अभीष्ट है। आधुनिक स्कूल प्रणाली का तंत्र इसी आवश्यकता के मद्देनजर विकसित किया गया। इसलिए हम देखते हैं कि औपनिवेशिक भारत में पहले शिक्षा अधिनियम के अन्तर्गत जब आधुनिक स्कूल खोले गए तो उनमें वर्ण-व्यवस्था जैसी स्थानीय विषमता के बावजूद सभी बच्चों को प्रवेश का अवसर दिया गया। इस दृष्टि से आधुनिक शिक्षा के आरम्भिक चरण को एक प्रस्थान-बिन्दु के तौर पर देखना जरूरी है।

हम देखते हैं कि राज्य द्वारा संचालित स्कूल प्रणाली के बावजूद पूर्व प्रचलित शैक्षणिक प्रणालियों पर कोई रोक-टोक नहीं लगाई गई। चर्च और अन्यान्य सामुदायिक संगठनों के शिक्षा-निकाय भी काम करते रहे। उनसे यह अपील जरूर की गई कि वे शैक्षिक विषय वस्तु में आधुनिक विषय-क्षेत्रों और प्रासंगिक अन्तर्वस्तु को सम्मिलित करें। ऐसा नहीं करने पर भी प्रायः किसी सख्त कार्यवाही का प्रावधान नहीं रहा। सिर्फ राज्य की शिक्षा प्रणाली उसे पूरी तरह मान्य नहीं करती थी। चर्च और अन्यान्य सामुदायिक संगठनों ने आधुनिक शिक्षा पर शक-शुबहे और एतराज जाहिर किए लेकिन लम्बी ऊहापोह के बाद अन्ततः इसे स्वीकार करना पड़ा। अपने प्रणालीगत और अन्तर्वस्तु के स्तर पर विशिष्ट अवशेष भी उन्होंने बनाए रखे। आधुनिक स्कूल प्रणाली के उपरान्त भी धार्मिक और सामाजिक समूहों ने अपनी पहलों पर शैक्षिक उपक्रम संचालित किए। ऐसी सामान्य जानकारी नहीं मिलती कि राज्य से ऐसे उपक्रमों को लेकर उनका कोई टकराव हुआ हो।

तब शिक्षा में निजी (प्राइवेट) हस्तक्षेपों को लेकर इधर तीखा प्रतिवाद क्यों दिखायी देता है। इसे भी प्रस्थान बिन्दु के जरिए ही समझा जा सकता है। यदि आधुनिक स्कूल प्रणाली का प्रस्थान बिन्दु नवजागरण (जिसने इसकी अन्तर्वस्तु को बदल दिया) और लोकतंत्र (जिसने इसके सार्वजनीकरण की अनिवार्यता प्रतिपादित की और नतीजतन आधुनिक स्कूल प्रणाली विकसित हुई) है तो शिक्षा के मौजूदा निजीकरण-प्रसंग का प्रस्थान-बिन्दु वैश्वीकरण और नव उदार अर्थव्यवस्था है। वैश्वीकरण ने पूंजी-घरानों को बहुराष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया है और नव उदारवाद ने मुनाफा बटोरने पर राज्यों के नियंत्रण को ढीला (कुछ मामलों में समाप्त भी) कर दिया है। गैट्स समझौते और उरग्वे दौर की वार्ताओं में सेवा क्षेत्रों-जिनमें शिक्षा और स्वास्थ्य प्रमुख हैं- को भी व्यापार के दायरे में लाने के प्रयास चल रहे हैं। शिक्षा को व्यापार के दायरे में लाने का मतलब है- इसे मांग और पूर्ति तथा उससे उत्पन्न मुनाफे के चक्र में शामिल करना। जाहिर है कि शिक्षा में कारोबारी संभावना लालायित करने वाली है और यही वो संक्रमण बिन्दु है जो पहले चरण से इसे अलहदा करता है।

पूर्व में राज्य की स्कूल प्रणाली के समानान्तर संचालित प्रणालियाँ वस्तुतः इसका विस्तार थीं अथवा एक हद तक पूरक प्रणाली की भूमिका निभाती थीं। चर्च या धार्मिक संस्थानों के हस्तक्षेप के चलते कुछ धार्मिक मूल्य-मान्यताओं को शैक्षिक विषयवस्तु या स्कूल-संस्कृति में समाविष्ट कर दिया जाता था। इसी भाँति सामुदायिक संगठन अपने स्कूलों के माध्यम से बच्चों में अपनी विशिष्ट अस्मिता को लेकर सचेष्ट रहते थे। लेकिन इससे मुनाफा अर्जित करने की कोई मंशा इन संस्थानों या समूहों की नहीं रही है। किसी व्यापारी या उद्योगपति ने भी अगर इस धारा में योगदान किया है तो इसे धर्मार्थ अथवा कल्याणकारी काम मानकर ऐसा किया है। उसने अधिक से अधिक स्कूल के बोर्ड या उसकी किसी इमारत पर अपने किसी पूर्वज का नाम डाल दिया होगा। कुछ दशक पहले तक शिक्षा एक ऐसा सामाजिक उपक्रम है जिसे बहुजन हिताय माना जाता रहा है और जिससे मुनाफा कमाना तो दूर लेकिन उसके बारे में सोचना भी निकृष्ट समझा जाता रहा।

बमुश्किल दो-ढाई दशक से तथाकथित पब्लिक स्कूलों की चमक-दमक और उनके अर्जित लाभ की चर्चाएं आम हुई। वैश्विक व्यवस्था में इन स्कूलों से निकले बच्चों के कैरियर की धूम प्रचारित की गई और इनकी धाक उत्तरोत्तर जमती गई। इसके चलते ऐसे स्कूलों का गुणात्मक विस्तार हुआ। इनकी निजता और विशिष्टता से अक्सर हम इतने आक्रान्त हो जाते हैं कि इनकी वैधानिक स्थिति पर किसी का ध्यान ही नहीं जाता। वस्तुतः ऐसा कोई भी स्कूल खोलने के लिए इसकी संचालक समिति का सोसायटी या ट्रस्ट के अन्तर्गत पंजीकरण करवाना अनिवार्य है। केन्द्रीय शिक्षा विभाग या राज्यों के किसी भी शिक्षा विभाग के परीक्षा बोर्ड से मान्यता प्राप्त करने के लिए स्कूल चलाने वाली संस्था का उपरोक्त पंजीकरण एक पूर्व-शर्त है। ध्यान रहे कि सोसायटी या ट्रस्ट अधिनियम में संस्था का पंजीयन कराते समय यह लिखित घोषणा करनी पड़ती है कि संस्था इससे कोई लाभ अर्जित नहीं करेगी। इसका सीधा-सा अर्थ है कि यदि ऐसा स्कूल संचालित करने वाली कोई संस्था मुनाफा कमा रही है तो यह अवैधानिक कृत्य के दायरे में आता है। यही कारण है कि कई राज्यों के उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायलय ऐसे स्कूलों की रीति-नीति को लेकर वैधानिक हस्तक्षेप करते रहे हैं।

शिक्षा में निजीकरण का मौजूदा विचार इस क्षेत्र में मुनाफा कमाने की अभी तक रही अवैधानिकता को वैध ठहराने का उपक्रम है। इसके लिए यह विचार विकास के क्षेत्र के वर्गीकरण में भी बुनियादी घपला करता है। जिस प्रकार यह दुनिया को सिर्फ दो ध्रुवों में बाँटकर देखता है- वैश्वीकृत और उसके बाहर विकसित या विकासशील अथवा अमेरिका के मित्र और शत्रु; वैसे ही विकास के क्षेत्र को भी यह विचार सिर्फ दो श्रेणियों में विभाजित करता है- निजी और सार्वजनिक। सामाजिक क्षेत्र को यह पूरी तरह तिरोहित

कर देता है। राज्य और निजी क्षेत्र के अलावा सामाजिक समूह या संगठन भी कहीं कोई भूमिका निभा सकते हैं, इसे नजरअंदाज कर दिया गया है।

शिक्षा, स्वास्थ्य और सामुदायिक सशक्तीकरण ऐसे पहलू हैं जो विकास के संदर्भ में भी सामाजिक क्षेत्र के दायरे में आते हैं। इस दायरे में सरकार और निजी उद्यम भी भागीदारी निभा सकते हैं लेकिन वे इसे कारोबारी अंदाज में नहीं ले सकते। यदि ऐसा होता है तो इसके गंभीर निहितार्थ है जिन पर आगे संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

शिक्षा की प्रकृति इतनी भिन्न और विशिष्ट है कि इसे आर्थिकी के नियमों के दायरे में लाना लगभग विध्वंसकारी कर्म है। इसे मांग और पूर्ति, उपभोक्ता और सेवा की प्रक्रिया से जोड़ना और लाभ-हानि के गणित से आंकना आघातकारी है। इसे प्रमाणित करने के लिए शिक्षा से जुड़े उन सुभाषितों को याद कर लेना ही पर्याप्त है जो इसे व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के ध्येय से जोड़ते हैं। शिक्षा जब धर्म के परिप्रेक्ष्य में थी तब इसका ध्येय ऐसा मनुष्य निर्मित करना था जैसा कि सम्बन्धित धर्म ने अपने आदर्श के अनुरूप परिभाषित किया था। धार्मिक संस्थानों से बाहर सामंती काल में भी शिक्षा से मानवीय नैतिक मूल्य आवश्यक रूप से सम्बद्ध रहे। जैसा कि पूर्व में कहा गया, आधुनिक शिक्षा का ध्येय ऐसा नागरिक तैयार करना था जो लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में सक्रिय भागीदारी कर सके। भागीदारी की यह भूमिका उत्तरोत्तर विस्तारित होती गई है। राज्य, व्यापक समाज, समुदाय, परिवार और व्यक्ति शिक्षा से अपनी आकांक्षाओं को जोड़ता रहा है। इस क्षेत्र में निजीकरण का उपक्रम न केवल इन आकांक्षाओं पर मारक प्रहार करने वाला है बल्कि इसे बहुसंख्यकों की पहुंच से परे कर देने वाला है। इस प्रकार यह उपक्रम शिक्षा के सार्वजनिक अभियान को अवरुद्ध कर देता है और परोक्षतः लोकतांत्रिक प्रणाली का क्षरण करने वाला है।

अर्थशास्त्र में नोबल पाने वाले अमर्त्य सेन और उनकी सहयोगी मार्था नुसवॉम इसीलिए शिक्षा के सवाल को जीवन की गुणवत्ता से जोड़ते हैं। जीवन की गुणवत्ता से उन्होंने जो आशय उद्घाटित किया है वह मनुष्य के बाह्य और अभ्यंतर की तमाम क्षमताओं व संभावनाओं के उभरने के अवसरों से जुड़ा है। अमर्त्य सेन शिक्षा, स्वास्थ्य और सामुदायिक सशक्तीकरण की प्रक्रियाओं को कारोबारी क्षेत्र से परे रखने की दृढ़ अभिशंसा करते हैं। वे इसे राज्य का दायित्व अर्थात् सार्वजनिक क्षेत्र का कर्तव्य मानते हैं। ऐसा नहीं होने पर वे इसे लोकतंत्र के विरुद्ध देखते हैं। ऐसा मानने वाले अमर्त्य सेन अकेले नहीं हैं बल्कि एक कतार है जो सामाजिक क्षेत्र को पर्यावरण की हदों तक विस्तृत देखती है और हवा, पानी तथा जमीन (आवास, वनस्पति आदि) को मुनाफे की लूट से अक्षुण्ण रखने के

लिए चिंतित और सक्रिय है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि निजीकरण का कोई भी उपक्रम सार्वजनिक प्रणाली की कमजोरियों से खाद-पानी ग्रहण करता है। हमारे यहां भी सार्वजनिक सेवाओं की कमजोरियां और आंशिक असफलताओं ने निजीकरण का आरंभिक मार्ग प्रशस्त किया है। शिक्षा के मामले में तो हमारी कमजोरियां और विफलताएं काफी प्रचारित हैं। इस क्षेत्र में निजीकरण की शुरुआत उच्च शिक्षा के स्तर पर हुई है जहां कारोबारियों को अधिक लाभ और कम जवाबदेही की उम्मीद है। चूंकि माध्यमिक और आरंभिक स्तर पर जवाबदेही और चुनौतियां ज्यादा हैं इसलिए शायद कारोबारी अभी कुछ ठिठके हैं। किन्तु इससे निश्चित नहीं हुआ जा सकता क्योंकि कारोबारी पहले प्रचलित प्रणाली को नाकारा सिद्ध करने का प्रयास करते हैं और ऐसा चल रहा है। विडम्बना यह है कि सार्वजनिक शिक्षा तंत्र इसे लेकर सचेत नजर नहीं आता।

शिक्षा के निजीकरण के पक्षधर गुणवत्ता, अवसर और चयन की बहुत बातें करते हैं। इसके पीछे उनकी प्रतिस्पर्धा की धारणा है जो बाजार के नियमों का निर्धारण करती है। सच्चाई यह है कि गुणवत्ता और उत्कृष्टता के उनके सोपान चढ़ते क्रम में तभी तक नजर आते हैं जब तक कि कोई सार्वजनिक प्रणाली स्थापित है। एक बार जब सार्वजनिक प्रणाली ध्वस्त हो जाती है तो उनकी प्रतिस्पर्धा का रुझान निरंतर गिरावट की ओर हो जाता है। भारत की पत्रकारिता के क्षेत्र में हम इसे देख सकते हैं जहां प्रसार भारती जैसे मामूली अपवाद को छोड़ दें तो पूरा मैदान मीडिया के निजी घरानों के समक्ष खुला है। यहां उदासीकरण के दौर में पनपे और विकसित हुए टी.वी. चैनलों के स्तर गिरावट में एक-दूसरे से होड़ ले रहे हैं। इसके लिए वे टी.आर.पी. अर्थात् मुनाफे को जिम्मेदार ठहराते हैं। इसका एक और उदाहरण देखना चाहें तो सिनेमा का क्षेत्र देख सकते हैं। वहां भी मुनाफे के अलावा एक यह तर्क दिया जाता है कि जनता यही देखना चाहती है। जबकि एकाध ही सही लेकिन अच्छे स्तर की फिल्में भी आती रही हैं। उनके निर्माता-निर्देशकों ने साफ कहा है कि वे किसी प्रतिस्पर्धा का हिस्सा नहीं बने हैं। जाहिर है कि स्पर्धा शुद्ध लाभ पर केन्द्रित है।

अब जरा कल्पना करें कि शिक्षा में सार्वजनिक क्षेत्र का कोई अस्तित्व नहीं है और इसमें सिर्फ निजी क्षेत्र की प्रतिस्पर्धा है। यह एक ऐसा अराजक दृश्य होगा जिसमें शिक्षा की उत्कृष्टता और निकृष्टता के स्थापित व प्रचलित मापदण्ड तिरोहित हो जाएंगे। निश्चय ही इससे विभिन्न ज्ञान अनुशासनों की अन्तर्वस्तु और वे प्रणालियां भी प्रभावित होंगी जो दीर्घकालिक और गंभीर शोध व प्रयोगों से संचित हुई हैं लेकिन जिनका वर्तमान में बाजार मूल्य नहीं दिख रहा है।

शिक्षा की गुणवत्ता के विमर्श में गुणवत्ता का जो आशय है वह बाजार द्वारा प्रयुक्त गुणवत्ता के अर्थ से नितान्त भिन्न है।

कारोबारी घराने शिक्षा के संदर्भ में भी गुणवत्ता की बात उसी तर्ज पर करते हैं जिस तरह वे बिक्री के लिए अपने उत्पादों की बात करते हैं। शिक्षा की मूल प्रवृत्ति और मनुष्य के लिए उसकी अभीष्टता पर विस्तार से बात करने का यहां अवसर नहीं है। तथापि कुछ पहलुओं को यहां ध्यान में रखा जा सकता है कि शिक्षा उत्पाद नहीं है, यह उपभोग सामग्री भी नहीं है, यह कोई हस्तान्तरणीय चीज नहीं है जो एक से दूसरे को वस्तु की तरह ली-दी जा सके।

शिक्षा एक प्रक्रिया बल्कि प्रक्रिया का भी प्रवर्तन है जो अपनी मूल प्रकृति में अन्तःक्रियात्मक है। यह अन्तःक्रिया दो अथवा अधिक व्यक्तियों के बीच एक प्रक्रिया के रूप में चलती है जिसमें परस्पर सीखने-सिखाने का उपक्रम होता है। जाहिर है कि इसे लाभ-हानि का गणित गड़बड़ा सकता है।

शिक्षा को महज नौकरी या आजीविका से जोड़कर देखने के प्रति आलोचक दृष्टिकोण बेशक हाशिये पर जा रहा है। लेकिन इतना ही यह भी सच है कि शिक्षा का लक्ष्य उतना ही अवनत हो रहा है। यदि शिक्षा एक खास तरह का कौशल भर विकसित करती है तो यह अंततः एक यांत्रिक उपक्रम में अपघटित हो जाती है। यह शिक्षा को इसके दर्शन और फलतः बुनियादी सैद्धान्तिकी से पदच्युत करके देखना है।

हम यह भी देख रहे हैं कि कई कारोबारी कथित सार्वजनिक-निजी सहभागिता में अपने ब्रांडों के साथ आ रहे हैं। स्कूल वे निकाय हैं जहां से एक व्यक्ति उन्नत होकर निकलता है। यदि वह किसी ब्रांड की छाप लेकर आता है तो उसकी स्वतंत्र इयत्ता का क्या होगा ?

यहां हम फिर दोहराना चाहेंगे कि इसका सबसे बड़ा खतरा तो लोकतंत्र, लोकतांत्रिक मूल्यों और खुद शिक्षा-प्रणाली के आन्तरिक लोकतंत्र के सामने है।

ऐसी स्थिति में शिक्षा में सार्वजनिक व निजी भागीदारी तथा स्कूल चयन के लिए वाउचर प्रणाली जैसी प्रवृत्तियों के प्रति सचेत और आलोचनात्मक रहने की जरूरत है। साथ ही अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा, समान स्कूल प्रणाली की पक्षधरता और सार्वजनिक शिक्षा तंत्र को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। शिक्षा में निजी सहयोग के लिए कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिए बशर्ते उसके बहुजन हिताय हैं। मुख्यधारा शिक्षा में नागरिक समाज का हस्तक्षेप इसी अर्थ में सामाजिक सहयोग का हिस्सा है जिसे निजीकरण से अलगाने की जरूरत है। ध्यान रहे कि शिक्षा में अधिकांश नवाचार व नवोन्मेष मुख्यधारा प्रणाली के बाहर नागरिक समाज की पहल पर हुए हैं और इन्होंने मुख्यधारा को और समृद्ध किया है। ♦